ISSN No. 2349-4654
नाद - नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक
वर्ष : 1, अंक : 1, नवम्बर 2014

उत्तराखण्ड के लोक संगीत में पारम्परिक लोक कलाकारों की भूमिका

रश्मि ड्योडी
शोध छात्रा संगीत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ-304022(राज.)

सार-संक्षेप

मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक चारों तरफ के वातावरण में संगीत गुंजायमान रहता है। मानव जाति के साथ ही संगीत कला का भी उद्‌भव हुआ है। यह बात तो सर्वविदित है कि किसी भी राष्ट्र, धर्म, जाति की संस्कृति का प्रमुख आधार संगीत पर भी निर्भर करता है। इसी प्रकार भारत की प्राचीन संस्कृति लोक संगीत में रची-बसी है। लोक संगीत में जन साधारण की सरलतम व भावात्मक अभिव्यक्ति निहित होती है। जब साधारण मनुष्यों के मनोभाव शब्दों का रूप लेकर लय व ताल बद्ध होते हैं तो इसका आनंद दुगुना हो जाता है। लोक वाद्यों के बिना लोक गीतों की परिकल्पना नहीं की जा सकती। उसी प्रकार लोक कलाकारों के बिना किसी भी प्रांत के लोक संगीत की परिकल्पना नहीं की जा सकती। उत्तराखण्ड के लोक संगीत में भी पारम्परिक लोक कलाकारों की अहम भूमिका है। ये पारम्परिक लोक कलाकार उत्तराखण्ड के लोक संगीत की परम्परा को मौखिक रूप में पीढ़ी-दर पीढ़ी सुरक्षित स्थानांतरित करते हैं। आज के समय में उत्तराखण्ड में लोक संगीत की उपस्थिति, समझ व पहचान इन्हीं कलाकारों की देन है। इन पारम्परिक लोक कलाकारों की कुछ मुख्य जातियाँ होती हैं। औजी, नैक (नायक), बाजगी, भाट, बाद्दी, हुडकिया, ढाकी एवं मिरासी, अठपहरिया आदि जातियों के अंतर्गत ये लोक कलाकार आते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में यह बताने का प्रयास किया गया है कि उत्तराखण्ड में ये विभिन्न जातियाँ किस प्रकार फसल बुबाई, कटाई, रोपाई, देवनृत्य, देवपूजा या किसी व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक के संस्कार आदि के कार्य इन लोगों के गायन-वादन के बिना संपूर्ण व शुभ नहीं माना जाता। अत: उत्तराखण्ड की संस्कृति व लोक संगीत को सुरक्षित रखने में इन पारम्परिक लोक कलाकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चिंता यह है कि इसका संरक्षण किस प्रकार किया जाए ?

शोध-पत्र

संगीत मानव में वह चेतना उत्पन्न करता है जिससे वह भारतीय संस्कृति में व्याप्त शांति, प्रेम एवं सहिष्णुता का तथा अपने कर्त्तव्यों व आदर्शों का सुन्दरता से पालन कर सके तथा मानव जीवन में, समाज में, परिवार में, राष्ट्र में, सुसंवाद का स्तर भर दे। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति की पहचान उसके लोक संगीत, लोकगीतों, लोक साहित्य, लोक कथाओं, लोक नृत्यों तथा जीवन गत मूल्यों द्वारा होती है। लोक संगीत जन साधारण द्वारा निर्मित अविरल संगीत है जो मानव के हृदय से सुख या दु:ख के क्षणों में स्वत: ही उत्पन्न होते हैं। लोकगीतों के विषय में महात्मा गांधी जी कहते हैं कि—''लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, उत्सव और मेले, ऋतुएँ और परम्पराएँ गाती हैं। ये लोकगीत ही जनता की भाषा है।''[1] लोक संगीत किसी व्यक्ति विशेष की उपज नहीं अपितु संपूर्ण समाज की उपज होती है।

भारत वर्ष के उत्तर में हिमालय के अंचल में बसा हुआ उत्तराखण्ड राज्य का लोक संगीत भी अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। यहाँ के लोकगीतों, जागरों, पवाड़ों, खुदेड गीतों, बाजूबंद व मंगलगीतों का अपना अलग ही संगीत तत्व है। उत्तराखण्ड का लोक संगीत यहाँ स्थित पहाड़ों की ऊँचाई-गहराई की भांति ही विविधता से परिपूर्ण है। इस पहाड़ी क्षेत्र में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार, धार्मिक अनुष्ठान, देवोपासना, देव यात्रा, मेले व त्यौहार आदि के अवसर पर यहाँ की लोक संस्कृति व लोक संगीत की झलक देखने को मिलती है। प्रत्येक अंचल विशेष की लोक संस्कृति के अनुसार वहाँ का सांस्कृतिक परिवेश भी पृथक होता है। उत्तराखण्ड की भी अपनी पृथक लोक संस्कृति है जो प्रभावी होने के साथ-साथ अन्य से भिन्न है जो उत्तराखण्ड की निजी पहचान है। यहाँ का लोक गायन, वादन, गीतों की भूमिका, विषयवस्तु, सांगीतिक धुनें सभी अपनी अलग विशेषता लिए हुए हैं। उत्तराखण्ड में विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न लोक गीतों व लोक नृत्यों का आयोजन होता है। यहाँ के लोकगीतों में देवी-देवताओं, वीरों की वीरताओं, राजाओं तथा प्रेमिकाओं का वर्णन तथा हर्ष, वेदना आदि मनोभावों की अभिव्यक्ति होती है। उत्तराखण्ड के लोकगीतों में यहाँ की परम्परा, बोली-भाषा व संस्कृति की पुष्टि होती है, जागर खुदेड़गीत, झुमैलो, भडया, चौफुला, बंसती नृत्यगीत, होरी/होली, बारहमासा गीत, चौमासा गीत, बाजूबंद, छोपती, छपेली, चाँचरी, झोड़ा, पवाड़े आदि लोकगीतों व लोकनृत्यों में उत्तराखण्डी संस्कृति से रूबरू हुआ जा सकता है।

किसी भी प्रांत का लोक संगीत मौखिक परम्परा के माध्यम से जीवित रहता है। इसी प्रकार उत्तराखण्डी लोक संगीत भी यहाँ के पारम्परिक लोक कलाकारों द्वारा मौखिक रूप में वर्तमान समय में विद्यमान है। इन लोक कलाकारों ने उत्तराखण्डी लोक संगीत को सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर के रूप में वर्तमान पीढ़ी तक सुरक्षित स्थानांतरित किया है। इन के

कारण आज के समय में लोक कला व लोक संस्कृति की विभिन्न विधाओं का ज्ञान हमें हो रहा है। ये कलाकार अपने बड़े-बुजुर्गों द्वारा गायन-वादन सुनकर या देखकर पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी कलाओं में निपुण होते रहते हैं। उत्तराखण्ड में इन कलाकारों के गायन-वादन के बिना शादी-विवाहोत्सव, देवोपासना, जागर, देवयात्रा आदि सम्पन्न व शुभ नहीं माने जाते। हमारी परम्परागत संस्कृति के अनुसार ही ये कलाकार गायन-वादन किया करते हैं। अत: यहाँ के लोक संगीत पर इन कलाकारों का सामाजिक अधिकार होता है। औजी, बद्दी, मिरासी, ढक्की, हुड़किया, बाजगी, बेड़ा, अठपहरिया, डोंडी, गडोई, होत्याड़ा, भाट, नायक (नैक) आदि जातियों के लोग उत्तराखण्ड के पारम्परिक लोक कलाकारों के अंतर्गत आते हैं।

''औजी, बद्दी, मिरासी, ढक्की, हुडक्या आदि व्यावसायिक जातियाँ हैं, जो अपनी कला का प्रदर्शन करके अपनी आजीविका कमाते हैं। औजी 'ढोल सागर' के ज्ञाता हैं। बद्दी आदि जातियाँ नाच गाकर ही अपना जीवन चलाती हैं। पहले इन्हें ठकुरी राजाओं का आश्रय प्राप्त था और ये उनके दरबारों में ही गाते-बजाते थे परन्तु आजकल ये आम जनता के सामने अपनी कला प्रदर्शित करते हैं। अपनी-अपनी कला में इन का कौशल देखते ही बनता है। इनके मुख्य नृत्य गीत इस प्रकार हैं, जैसे— थाली नृत्य/नृत्य गीत, सरौं नृत्य, चैती, कुलाचार, लॉग, साँप नृत्य इत्यादि।''[2] इन लोक कलाकारों के विषय में अधिक जानकारी हेतु विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है।

औजी— औजी ढोल व दमौ (दमाऊ) बजाने का कार्य करते हैं जो कि उत्तराखण्ड के प्रत्येक हिस्से में स्थापित हैं। ''वाद्ययंत्र से संबंधित ग्रंथ 'ढोलसागर' के ज्ञाता और व्याख्याकार औजी या दास ही हैं जिन्होंने श्रुति परम्परा द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस अनमोल विरासत को जीवित रखा है।''[3] किसी भी धार्मिक अनुष्ठान, देव पूजा-देवनृत्य, जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कार, खेत-खलिहानों में बुबाई, रोपाई तथा फसल कटाई, मेले, पर्वों व त्यौहारों की कल्पना औजी वर्ग के ढोल दमाऊँ के वादन के बिना नहीं की जा सकती।

''ढोल सागर ग्रंथ में 'औजी' को विभिन्न देवी-देवताओं से सीधा सम्पर्क करते दर्शाते हुए उसे एक सिद्ध व्यक्ति निरूपित किया गया है। वह मात्र वादक ही नहीं, एक साधक और आध्यात्मिक-धार्मिक व्यक्तित्व भी है। इन्हें 'गुनीजन' व 'कलावंत' भी कहा गया है।''[4]

नैक (नायक)— नैक जाति के पुरुष व देवदासियाँ पुराने समय में नाटक व गीत गाते थे। ये लोग बसंत ऋतु के आगमन पर गाँव-गाँव जाकर गीत-गाते थे व नृत्य करते थे। आज भी ये लोग इसी परम्परा का निर्वहन किया करते हैं तथा नैक जाति द्वारा किया जाने वाला 'मुखौटा नृत्य' उत्तराखण्ड के लोगों में आज भी बहुत प्रसिद्ध है।

बाजगी— ये लोग चैत के महीने में गाँव-गाँव जाकर अपने ठाकुर(सवर्णों) के आंगन में ढोल-नगाड़े लेकर जाते हैं तथा अपनी औरतों को नचाकर उनकी समृद्धि के लिए गीत गाते हैं जिसके बदले में उन्हें खूब मान-सम्मान, अन्न, धन, बर्तन, वस्त्र आदि मिलता है। चैत माह में मांगा गया अनाज व धन (चैती पसांरा) से बाजगियों के कई महिने तक का पालन-पोषण हो जाता है। आज भी उत्तराखण्ड के कई गांवों में इस परम्परा को निभाया जाता है।

भाट— ये लोग शिव एवं देवी के मंदिरों में शिव गाथाएँ गाते हैं। ये लोग आज भी जोशीमठ (गढ़वाल) के समीप भला गाँव में रहते हैं। राजाश्रय प्राप्त होने के कारण इन लोगों को अपनी कला को दिखाने का अवसर प्राप्त था, किन्तु यह परम्परा सन् 1930 के लगभग समाप्त हो गई। ये लोग हुडकिया के समान ही होते हैं, अंतर सिर्फ यह होता है कि इनके घर की औरतें नहीं नाचती।

बाद्दी— बाद्दी और बादिनियाँ लोग जीविकोपार्जन हेतु नृत्य और संगीत पर निर्भर करते हैं। ये लोग शादी-विवाहोत्सव, धार्मिक अनुष्ठानों आदि अवसर पर नृत्य तथा गायन करते हैं। उत्तराखण्ड में शैव परम्परा मुख्यत: इसी जाति के लोगों द्वारा सुरक्षित है। ये लोग शिव को अपना 'कला गुरू' मानते हैं। उन्हीं की भांति जटा धारण करते हैं और जब कभी प्राकृतिक आपदाएँ आती हैं तो अपने बालों को शिव को अर्पित करते हैं। ''दो पर्वत पट्टियों के बीच एक रस्सा बांध कर बेड़ा (बाद्दी) चौकी पर बैठ कर उसे पार करता था इस प्रक्रिया में बेड़ा किसी विशेष परिस्थिति में बच पाता था अन्यथा गिर कर मर जाता था। जब बेड़ा मर जाता था तो उसके बाल नोचकर पवित्र चिन्ह के रूप में घर ले आते थे। वे बाल महादेव के प्रवर्ग्य प्रतीक माने जाते थे।'' ये कार्य प्राकृतिक आपदाओं के निवारण हेतु किया जाता था। लांग नृत्य में बाद्दी ढोलक बजाते हुए गीत गाता है तथा उसकी पत्नी (बादीण) गोल घेरे में घूमकर नाचती हैं।

हुडकिया— पेशेवर हुडकिये शौर्य गाथाएँ (पंवाड़े) गाने का काम करते हैं। ये लोग अपनी जीविका गांव-गांव घूमकर अपनी कला का प्रदर्शन कर के चलाते हैं। हुडकियों की विशेष वेशभूषा होती है। सिर पर पगड़ी, घुटनों के नीचे तक लम्बी मिरजई, चूड़ीदार पायजामा, गले में छोटी-छोटी घंटियाँ और पैरों में घुंघरू बांधे हुए होते हैं। औजी के समान हुडकिये भी आशु कवि होते हैं। ये गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली में प्राचीन भडो(वीर-योद्धाओं) के पंवाड़े (वीरगाथा) सुनाकर अपनी आय कमाते हैं।

ढाकी एवं मिरासी— ढाकी व मिरासी जाति के लोग बेड़ा-बादी के लोगों की भांति कला प्रिय व कला के उपासक होते हैं। बेड़ा-बादी शिव के उपासक हैं तो मिरासी रामलीला और जनसाधारण का मनोरंजन करते हैं। मिरासी लोग ढोलक, सारंगी, हारमोनियम, बजाकर गीत गाते हैं और बादियों की भांति इनकी बहू-बेटियाँ नृत्य करती हैं। मिरासिनें लयबद्ध गीत गाने के साथ ही चुलबुलाहट युक्त नृत्य करती हैं। ढाकी लोग मिरासियों से कम प्रशिक्षित कलाकार होते हैं। औजी जब अपना व्यवसाय बदलकर अर्थात् ढोल का त्याग कर ढोलक धारण करता है तो उसे 'ढाकी' कहा जाता है।

अठपहरिया— इस जाति के लोग राजा के महलों, मंदिरों या सैन्य छावनियों में प्रत्येक प्रहर की नौबत बजाया करते थे। वर्तमान में इनकी उपस्थिति उत्तराखण्ड के टिहरी व पौड़ी गढ़वाल में पायी जाती है। इन में से अधिकतर लोगों ने अपना व्यवसाय छोड़ अन्य व्यवसाय अपना लिया है।

उत्तराखण्ड की इन सभी जातियों के कलाकार मौखिक कला की परम्परा का निर्वहन करते हैं। इनके बिना उत्तराखण्ड के स्थानीय निवासियों का सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व सामाजिक विकास नहीं हो पाता क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षण की घटना, मनोभाव, दैनिक क्रियाकलापों, धार्मिक अनुष्ठानों, जन्म के पहले दिन से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न अवसरों पर अशुद्धि से शुद्धि की कल्पना का संदेश इन्हीं लोक कलाकारों द्वारा दिया जाता है। वर्तमान समय में उत्तराखण्ड में लोक संगीत की उपस्थिति तथा जन साधारण में लोक संगीत की समझ व रूचि इन्हीं कलाकारों की देन है। किन्तु शनैः-शनैः इन लोक कलाकारों द्वारा अपनी परम्परागत कला का व्यवसाय का त्याग करना पड़ रहा है क्योंकि इन लोगों के सामने प्रमुख व बड़ी समस्या है, आर्थिक समस्या। उन्हें अपनी कला के प्रदर्शन से कम आय प्राप्त होती है जिससे उनका दैनिक जीवन प्रभावित होता है व अपनी कला के प्रति अभिरूचि कम हो गई। उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी अनेकों कष्टों से हो रही है। सबसे मुख्य बात यह है कि इन कलाकारों की सभी जातियाँ ऊँच-नीच के भेदभाव व अश्पृश्यता के दंश को आज भी झेल रही हैं जिस कारण आज की नई पीढ़ी अपनी परम्परागत कला को अपनाने व प्रदर्शन करने में संकोच करती है। इसके अतिरिक्त आज के समय में पाश्चात्य व नये वाद्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। जैसे-सिंथेसाइजर, मैंडोलियन, गिटार, बैंजो आदि। इन वाद्यों के संगीत के आगे आज की पीढ़ी का शिक्षित युवा पाश्चात्य संस्कृति की ओर झुक कर अपनी लोक कला की अवहेलना कर रहा है, जिससे इन लोक कलाकारों की आजीविका पर भी प्रभाव पड़ा है।

अतः उत्तराखण्ड के इन सभी जाति के कलाकारों की लोक संगीत की कला के संरक्षण व विकास हेतु किसी सरकारी संरक्षण अथवा योजना को प्रारंभ किया जाना चाहिए जिससे इनका जीविकोपार्जन सुगम हो तथा हमारा लोक संगीत आने वाली कई पीढ़ियों तक सुरक्षित व संरक्षित रहे।

पाद-टिप्पणियाँ

1. महात्मा गाँधी, उद्धृत अनिता, राजस्थान के लोकगीत और उसमें प्रयुक्त लोक वाद्य, पृ. सं. 43
2. नेगी, शंतन सिंह, उत्तराखण्ड के शिल्पकार (सांस्कृतिक विरासत के संवाहक), पृ. सं. 92
3. सहगल, सुधा, शिखा, ममगाई, पौड़ी गढ़वाल के लोक संगीत का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. सं. 51
4. जोशी, महेश्वर प्रसाद, शूद्रों का ब्राह्मणत्व, पृ. सं. 25
5. बहुगुणा, विजय, चन्द्रमोहन, उत्तराखंड के शिल्पकार (शिल्पकार—मौखिक लौकिक परम्पराओं के संवाहक), पृ. सं. 13

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

जोशी, महेश्वर प्रसाद, जोशी, कु. ललित प्रभा, उत्तराखण्ड हिमालय, समाज संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्त्व, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा

तिवारी, ज्योति, कुमाऊँनी लोकगीत तथा संगीत-शास्त्रीय परिवेश, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2000

पेटशाली, जुगलकिशोर, उत्तरांचल के लोक वाद्य, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, 2002

प्रदयोत, चमन लाल, भट्ट, प्रवीण कुमार, अरुण कुकसाल, उत्तराखण्ड के शिल्पकार, बिनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, 2012

ममगांई, शिखा, सहगल, सुधा, पौड़ी गढ़वाल के लोक संगीत का विश्लेषणात्मक अध्ययन, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2006

मैठाणी, तुष्टि, भारतीय आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में गढ़वाली लोक संगीत, सत्यम पब्लिकेशंस, 2006

बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद, उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश, बिनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, 2009